JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue

JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)

An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

आदि शंकराचार्य और श्रीमंत शंकरदेव के दर्शन में मोक्ष की अवधारणाएँ: एक तुलनात्मक अध्ययन

लिंकन शरणीया

शोधार्थी, संस्कृतविभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय ।

सार:

वेद, उपनिषद, पुराण आदि आर्ष ग्रन्थों में शास्त्रकारों ने मानव जीवन के चार प्रमुख उद्देश्यों का निरूपण किया है - धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष। इन्हीं को भारतीय सनातन परम्परा में पुरुषार्थ चतुष्टय कहा गया है। इन चारों में मोक्ष को मानव जीवन का परम एवं चरम लक्ष्य माना गया है। विभिन्न दार्शनिक परम्पराओं तथा धार्मिक ग्रन्थों में भी जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्षप्राप्ति ही बतलाया गया है। 'मोक्ष' का तात्पर्य समस्त दुःखों एवं कष्टों की पूर्ण निवृत्ति से है। भारतीय दर्शन में प्रायः सभी आस्तिक एवं नास्तिक दर्शनों ने मोक्ष को सर्वोच्च पुरुषार्थ के रूप में स्वीकार किया है। यद्यपि मोक्ष की प्राप्ति की दृष्टि, उसका स्वरूप तथा साधन प्रत्येक दर्शन में भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्णित हैं, तथापि सभी का साध्य या परम लक्ष्य आत्ममुक्ति ही है। किसी दर्शन में इसे मोक्ष, किसी में निर्वाण, किसी में कैवल्य, किसी में अर्हत्त्व, तो किसी में बोधिसत्त्व अथवा स्वर्ग के नाम से संबोधित किया गया है। प्रस्तुत आलेख में आदि शंकराचार्या एवं श्रीमंत शंकरदेव के अनुसार मोक्ष के स्वरूप, मोक्ष का मानव जीवन में महत्व तथा मनुष्य का मोक्ष के प्रति आकर्षण का निरुपण करने के साथ-साथ उसकी प्राप्ति के साधनों को समझने का प्रयास है।

बीज शब्द : मोक्ष, कर्म

प्रस्तावना:

भगवान शंकर स्वयं भगवत्पाद आदि शंकराचार्य के रूप में अवतरित हुए थे। "शंकरो शंकरः साक्षात्" यह अनुश्रुति सर्वविदित है, जिससे स्पष्ट होता है कि शंकराचार्य ने अपने मात्र बत्तीस वर्षों के अल्प जीवनकाल में अद्भुत जनकल्याणकारी कार्यों का संपादन किया। इससे यह सिद्ध होता है कि वे साक्षात भगवान शंकर के अवतार के रूप में इस धरती पर पधारे थे। स्वयंप्रकाशमुनि ने एकश्लोकी व्याख्यान में शङ्कराचार्य के जीवन पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि-

"अष्टवर्षे चतुर्वेदी, द्वादशे सर्वशास्त्रवित्।
षोडषे कृतवान भाष्यं, द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात्॥"[1]

आचार्य ने भारत की सनातन वैदिक धर्म-मर्यादा, देश की सुरक्षा एवं राष्ट्र की एकता अखण्डता को बनाए रखने के लिये, संभावित विपदाओं को ध्यान में रख कर भारतवर्ष को सुरक्षित रखने के लिये चारों दिशाओं में चार धर्म राजधानियों की स्थापना की। पुनः प्रस्थानत्रयी अर्थात् उपनिषद् ब्रह्मसूत्र एवं गीता पर भाष्य लिखे, वेद वेदाङ्ग स्मृति तथा विशाल पौराणिक वाङ्मय के गम्भीर अध्ययन मनन के फलस्वरूप विरोधी नास्तिक मतों का युक्तिपूर्वक खण्डन-मण्डन करके अद्वैत वेदान्त की स्थापना की।

आचार्य अर्थात् आदि शंकराचार्य के दर्शन का प्रभाव पूर्वोत्तर भारत के असम राज्य में जन्म लेने वाली पुण्यात्मा श्रीमंत शंकरदेव के दर्शन पर परिलक्षित होता है। शंकरदेव का जन्म १४४९ ई. में मध्य-असम के नगॉव जिले के आलिपुखुरी गॉव में हुआ था। इनके पिता का नाम कुसूम्बर भुञा और माता सत्यसंन्धा था। शंकरदेव ने अत्यल्प समय में व्यापक शिक्षा प्राप्त कर अपनी तीव्र बुद्धि के कारण बाल्यावस्था में ही विशिष्ट स्थान अर्जित किया। श्रीमंत शंकरदेव को छोड़कर असमिया भाषा-साहित्य-संस्कृति की कल्पना ही नहीं कर सकते है। श्रीमंत शंकरदेव ने असमीया के अतिरिक्त संस्कृत और ब्रजावली भाषा में भी रचनाएँ की हैं। वे संस्कृत के विद्वान थे। उन्होंने वैष्णव शास्त्रों के गंभीर अध्ययन से जो अनुभव प्राप्त किया था, उन्हें विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त किया है। उन्होंने काव्य, गीत, नाटक, भटिमा आदि की रचना करके विपुल साहित्य समाज को प्रदान किया। शंकरदेव ने अपनी रचनाओं के माध्यम से असम तथा उत्तर-पूर्वांचल की जनता को भारतीय दृष्टि प्रदान की थी।

[1] श्रीशङ्कर दिग्विजय- माधवाचार्य, अनु- बलदेव उपाध्याय पृष्ठ- ८८

अद्वैत वेदान्त में **"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति"**[2] की मान्यता रही है। इसे ही विभिन्न पुराणों एवं अन्य ग्रन्थों में विविध रूपों में व्याख्यायित किया गया है । इसके अनुरूप ही शंकरदेव ने एकशरणहरिनामधर्म का मूलमन्त्र **"एक देव, एक सेव, एक बिने नाइ केव"**[3] का प्रचारित और स्थापित किया है। श्रीमन्त शंकरदेव ने प्रत्येक क्षेत्र में विविधता में एकता और द्वैतता में अद्वैतता की कल्पना की है। इसके मूल में उनके एक देव के प्रति अटूट नैष्ठिक भक्ति ही रही है। चाहे विचार परिवार का हो या समाज का, अर्थ का हो या राजनीति का सबको उनके अद्वैत दर्शन ने प्रभावित किया है। अद्वैत दृष्टि से उनके निम्नलिखित उद्घोषों को सामाजिक विचारधारा की आधारशिला मान सकते है-

"शत्रु मित्र उदासीन सबाते समान"[4]

अर्थात् शत्रु, मित्र सबके साथ सामन उदासीन होना चाहिये।

मूल आलेख:

भारतीय दार्शनिक परम्पराओं में मोक्ष की अवधारणा बहुआयामी है, और इसी बहुलता के भीतर आदि शंकराचार्य तथा श्रीमन्त शंकरदेव मोक्ष के स्वरूप के विषय में अलग-अलग सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हैं। आदि शंकराचार्य का यह मानना है कि- 'मोक्ष' का अर्थ आत्मा एवं ब्रह्म का एकत्व भाव है। अद्वैत वेदान्त में यह माना गया है कि आत्मा का यथार्थ स्वरुप ब्रह्म है, किन्तु अज्ञान से प्रभावित जीव अपने को ब्रह्म से भिन्न समझने लगता है। जीव को अपने वास्तविक स्वरुप को न समझना ही उसका अज्ञान है और यही जीव के बन्धन का कारण है। अतः आदि शंकराचार्य के मतानुसार मोक्ष की प्राप्ति केवल ज्ञान के उदय एवं अज्ञान के निरसन से संभव है। जब आत्मा अपने यथार्थ स्वरूप का बोध प्राप्त कर लेती है, तब वह ब्रह्मस्वरूप होकर सच्चिदानन्द की अवस्था को प्राप्त करती है, जो परमानन्द की चरम अनुभूति है। आचार्य शंकर ने आत्मा को स्वभावतः शुद्ध चैतन्य माना है, जो निर्विकार होने के कारण नित्य मुक्त है। इस प्रकार उनके मत में मोक्ष किसी नवीन वस्तु की प्राप्ति नहीं, अपितु नित्यसिद्ध आत्मस्वरूप की अनुभूति है- अर्थात् 'प्राप्तस्य प्राप्तिः'। वस्तुतः आचार्य शंकर के अनुसार मोक्ष का वास्तविक अर्थ है- आत्मा का अपने स्वरूप के प्रति अभिज्ञान, जहाँ ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय का भेद पूर्णतः लीन हो जाता है।

श्रीमन्त शंकरदेव के दर्शन में यह प्रतिपादित किया गया है कि केवल भक्तिरस के माध्यम से ही मोक्ष या मुक्ति की प्राप्ति संभव है। उनके मतानुसार, ज्ञानमार्ग और कर्ममार्ग की अपेक्षा भक्तिमार्ग ही श्रेष्ठ और सर्वाधिक प्रभावकारी है। भक्ति के द्वारा चित्त की शुद्धि तथा आध्यात्मिक उत्कर्ष संभव होता है। श्रीमन्त शंकरदेव ने भक्ति को चार प्रकारों में वर्गीकृत किया है- उत्तम भक्ति, अंतरण्ग भक्ति, निर्गुण भक्ति और सप्रेम भक्ति।[5] इसी प्रकार उन्होंने भक्तों को भी तीन श्रेणियों में विभाजित किया है- प्राकृत, मध्यम और उत्तम। प्राकृत भक्त केवल हरि की उपासना तक सीमित रहता है। मध्यम भक्त सर्वभूतों में ईश्वर का साक्षात्कार करता है तथा समानता, दया और करुणा के भाव से युक्त रहता है। उत्तम भक्त ईश्वर को ही परम तत्व मानकर कामना और वासनाओं से रहित होकर निष्काम कर्म एवं सप्रेम भक्ति के माध्यम से ईश्वर के साथ पूर्ण आत्मसात् हो जाता है।

आदि शंकराचार्य ने अपनी कृति विवेकचूडामणि में 'मोक्ष' के विषय में कहा है कि- "मोक्ष का अर्थ है अखंड ब्रह्म स्वरूप में स्थित होना"

वेदान्तसिद्धान्तनिरुक्तिरेषा ब्रह्मैव जीवः सकलं जगच्च ।
अखण्डरूपस्थितिरेव मोक्षो ब्रह्माद्वितीये श्रुतयः प्रमाणम् ॥[6]

अर्थात् वेदान्त का सिद्धान्त तो यही कहता है कि जीव और सम्पूर्ण जगत् केवल ब्रह्म ही है और उस अद्वितीय ब्रह्म में निरन्तर अखण्डरूप से स्थित रहना ही मोक्ष है। ब्रह्म अद्वितीय है- इस विषयमें श्रुतियाँ प्रमाण हैं। आचार्य शंकर के अनुसार मोक्ष कोई प्राप्त करने योग्य बाह्य वस्तु नहीं, बल्कि वस्तुतः जीव का स्वयं के ब्रह्मस्वरूप में स्थित होना है। यथा- **"स्वात्मन्यवस्थानं मोक्षः।"**[7] अर्थात् आत्मा का अपने यथार्थ रूप में अवस्थान ही मोक्ष है। आदि शंकराचार्य के सिद्धान्तानुसार जीव, जगत और ब्रह्म के मध्य जो भिन्नता प्रतीत होती है, वह केवल अज्ञान के कारण उत्पन्न अविद्यानिमित्त भ्रांतिमात्र है। जब साधक अपने स्वरूप का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब वह जानता है कि संपूर्ण विश्व, बुद्धि, मन, महत् तथा अहंकार ये सभी ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं। ब्रह्म अद्वैत का यह अनुभूतिज्ञान ही मोक्ष की अखण्ड स्थिति का द्योतक है, जिसकी पुष्टि श्रुति, स्मृति और समस्त वेदान्त करते हैं।

श्रीमन्त शंकरदेव ने मोक्ष की अवधारणा को व्यक्त करने के लिए 'मुकुति' शब्द का प्रयोग किया है। वे मोक्ष के विषय में कहते हैं -

भाई मुखे बोला राम हृदये धरा रूप।
एतेके मुकुति पाईवा कहिलो स्वरूप।।[8]

अर्थात् हे भाई, अपने मुख से भगवान राम का नाम जपो और अपने हृदय में उनके दिव्य रूप का ध्यान रखो। इसी साधना से मुक्ति प्राप्त होगी, यही मुक्ति का स्वरूप है। श्रीमन्त शंकरदेव अपने ग्रंथ भागवत में करते हैं-

बुद्धि मन इंद्रिय महत् अहंकार
ब्रह्मत पृथक नूहि यतेक संसार।
ब्रह्म व्यतिरेके यत देखा मिछा आन।

---

[2] ऋग्वेद १/१६४/४६

[3] महापुरूष श्रीशंकरदेव और श्रीमाधवदेव - लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ पृष्ठ - ३०१

[4] शंकरदेवकृत भागवत अष्टमस्कन्द /१२४७

[5] भक्ति रत्नाकर १४/४९५

[6] विवेकचूडामणि। ४७९

[7] तैत्तिरीयोपनिषद् शांकर भाष्य। १/११ विदुपोऽशररीत्वम् ।

[8] कीर्तनघोषा । ५१९

जरीत उपजि येन आछे सर्पज्ञान।।[9]

अर्थात् यह बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ, महत् और अहंकार ये सब ब्रह्म से अलग नहीं हैं। सम्पूर्ण संसार भी वास्तव में ब्रह्म से भिन्न नहीं है। ब्रह्म के अतिरिक्त जो भी भिन्न दिखाई देता है, वह सब मिथ्या यानी असत्य/अस्थायी प्रतीति मात्र है। जैसे रस्सी को अज्ञानवश साँप समझ लिया जाता है, उसी प्रकार ब्रह्म के ऊपर अज्ञान के कारण संसार का ज्ञान उत्पन्न होता दिखता है। माया या भ्रम के बारे में शंकरदेव इस प्रकार कहते हैं-

"अबस्तुक देखावय बस्तुक आवरि ।
एहिसे मोहोर माया जाना निष्ठ करि॥
नथाकितो देखि येन चन्द्रमा दुतय।
थाकितो राहुक येन केहो नेदेखय॥"[10]

अर्थात् जो सत् को आवृत करके असत् को दिखाता है। नहीं होने पर भी चन्द्रमा दों दिखाई पड़ते हैं। रहते हुए भी राहु कही नहीं दिखता, यही माया है इसमें कोई संशय नहीं।

श्रीमन्त शंकरदेव मतानुसार भक्ति एक ऐसा सरल मार्ग है जो जीव को प्रेम और समर्पण के माध्यम से स्वतः मुक्ति की ओर अग्रसर करता है- मुख से नामोच्चारण और हृदय में ईश्वर-रूप का अखण्ड चिंतन। यह संयुक्त साधना साधक के चित्त को निर्मल बनाकर उसे भगवद्स्वरूप में स्थित करती है। नाम-स्मरण और रूप-ध्यान के इस द्वंद्वहीन अभ्यास से जीव अपने बन्धनरूप अविद्या का नाश कर मुकुति' लाभ कर सकता है । शंकरदेव के अनुसार यही 'मुकुति' का वास्तविक स्वरूप है, जो भक्त और भगवान के प्रेमपूर्ण संबंध में फलित होता है। श्रीमन्त शंकरदेव के अनुसार वास्तव में, यह समस्त दृश्य जगत, पंचज्ञानेंद्रियाँ, मन, बुद्धि, महत् तत्त्व और अहंकार- सब ब्रह्म के ही विभिन्न उपाधियाँ हैं। स्वतंत्र सत्ता के रूप में इनका अस्तित्व नहीं है। ब्रह्म से अलग जो कुछ दिखाई देता है, वह अज्ञानजनित भ्रम मात्र है। जैसे अंधकार में रस्सी को सर्प समझ लिया जाता है, वैसे ही अज्ञानवश ब्रह्म पर जगत की कल्पना कर ली जाती है। जब ज्ञान का प्रकाश उदय होता है, तो यह भ्रम स्वतः नष्ट हो जाता है और शुद्ध ब्रह्म-सत्ता का ही अनुभव रह जाता है।

दोनों आचार्यों की दार्शनिक दृष्टि का अवलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि उनके मत में संसार, देह, बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ, महत् और अहंकार इन सबकी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है, ये ब्रह्म अथवा ईश्वर की ही उपाधियाँ हैं। ब्रह्म से भिन्न जो भी वस्तु प्रतीत होती है, वह वास्तव में अविद्या से उत्पन्न मिथ्याकल्पना मात्र है। दोनों आचार्य इस जगत्-भ्रम अथवा अध्यारोप की प्रक्रिया को स्पष्ट करने के लिए प्रसिद्ध 'रस्सी-सर्प' की उपमा का सहारा लेते हैं, जिसके माध्यम से वे समझाते हैं कि अज्ञानवश जीव वास्तविक ब्रह्म-तत्त्व को न पहचानकर उस पर संसाररूप विभ्रम का आरोप कर देता है; ठीक वैसे ही जैसे अँधेरे में रस्सी को सर्प मान लेने की भ्रांति उत्पन्न हो जाती है।

मोक्ष प्राप्ति में कर्म की भूमिका

आदि शंकराचार्य स्पष्ट कहते हैं कि मोक्ष का संबंध किसी भी प्रकार के कर्म से नहीं है, क्योंकि कर्म चाहे वे विहित हों या निषिद्ध, शुभ हों या अशुभ, सुख और दुःख जैसे अनुभवों को उत्पन्न करते हैं, और इन अनुभूतियों के लिए शरीर का होना अनिवार्य है; जबकि मोक्ष अशरीर और नित्य अवस्था है, इसलिए वह कर्मों द्वारा प्राप्त नहीं हो सकता। आदि शंकराचार्य कहते हैं- कि यदि मोक्ष कर्म पर निर्भर होता तो वह अवश्य ही अनित्य और सातिशय होता, किन्तु ये दोनों लक्षण मोक्ष के सम्प्रत्यय को बाधित करते हैं। इसका कारण है कि मोक्ष नित्य और निरतिशय अवस्था है इसलिए मोक्ष किसी कर्म से उत्पन्न कार्य नहीं है।[11]

मोक्ष को यद्यपि ज्ञान साध्य माना गया है, परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि शंकराचार्य कर्म, ध्यान या उपासना को महत्वहीन समझते हैं। वे स्पष्ट करते हैं कि ऐसे सभी साधन मन को शुद्ध, शांत और अंतर्मुख बनाते हैं, क्योंकि केवल शुद्ध चित्त ही आत्मज्ञान को धारण करने में सक्षम होता है और इसी ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति संभव होती है। आदि शंकराचार्य ज्ञान मार्ग को ही मोक्ष का साधन क्यों मानते हैं? क्योंकि उनके अनुसार कर्मों से उत्पन्न कोई भी फल नित्य नहीं होता, जबकि मोक्ष नित्य और निरतिशय अवस्था है, इसलिए मोक्ष का अधिष्ठान केवल ज्ञान मार्ग ही हो सकता है।

श्रीमन्त शंकरदेव के अनुसार कर्म ही जीव के उद्भव, उसकी स्थिति, उसकी गति तथा उसके अंतिम परिणाम का प्रमुख नियामक तत्व है। जीव किस प्रकार जन्म लेता है, किस प्रकार संसार में विविध सुख-दुःखों का अनुभव करता है, और अंत में किस गति को प्राप्त होता है, यह सब उसके संचित एवं वर्तमान कर्मों के प्रभाव से निर्धारित होता है। मनुष्य जिस प्रकार के कर्म करता है, उसी के अनुसार उसे जन्म मिलता है और उसी के आधार पर उसकी मृत्यु या प्रलय भी निश्चित होती है। सुख, दुःख, भय, शोक अथवा अन्य सभी सांसारिक अनुभव भी किसी बाहरी शक्ति की मनमानी नहीं, बल्कि जीव द्वारा किए गए कर्मों का ही अपरिहार्य फल हैं। इस प्रकार शंकरदेव कर्मसिद्धान्त को जीवन का निर्णायक नियामक बताते हैं और समझाते हैं कि जीव का संपूर्ण भौतिक और मानसिक अनुभव उसकी आनन्द की प्राप्ति से लेकर उसके दुखों तक सब कर्म की प्रक्रिया से ही उत्पन्न होते हैं। कर्म के बारे में श्रीमन्त शंकरदेव इस प्रकार कहते है-

कर्मेसे उपजै जीव कर्मेसे प्रलय।
सुख दुःख भय शोक कर्मेसे मिलय।।[12]

अर्थात् कर्मों से ही जीव का उद्भव होता है, और कर्मों के कारण ही प्रलय रूपी अंत भी आता है। जीव को सुख, दुःख, भय तथा शोक ये सब उसके ही कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त होते हैं।

श्रीमन्त शंकरदेव कर्मबन्धन के क्षय और मुक्ति की साधन अत्यंत सरल, स्पष्ट तथा आध्यात्मिक रूप से सहज व्याख्यान प्रस्तुत करते है। उनके अनुसार जब साधक भक्ति, नाम- स्मरण और परमात्मा के रूप चिंतन के माध्यम से अपने संचित कर्मों का क्षय कर देता है, तब वह कर्मबंधन से पूर्णतः मुक्त हो जाता है। जैसे ही ये सभी कर्म संस्कार नष्ट होते हैं, जीव पर अविद्या का आवरण भी हटने लगता है। अंततः मृत्यु-क्षण या 'अन्तकाल' में, जब साधक का चित्त

[9] शंकरदेवकृत भागवत द्वादशस्कन्द /१७१

[10] शंकरदेवकृत भागवत द्वितीयस्कन्द । २२९।

[11] सक्सेना, डॉ कंचन, (1993), पूर्वी एवं पाश्चात्य धर्मों में मोक्ष की अवधारणा, दिल्ली : निर्मल पब्लिकेशन, पृ. 36-37

[12] शंकरदेवकृत भागवत दशमस्कन्द । १००५

पूर्णतः निर्मल और ईश्वर-समर्पित होता है, तब वह परमात्मा में ही लीन हो जाता है। यह लीनता न तो किसी साधारण मिलन की अवस्था है, न ही किसी स्वर्गीय फल का अनुभव, बल्कि वह अद्वैतात्मक स्थिति है जहाँ जीव-ब्रह्म का भेद समाप्त हो जाता है। पूर्व में बताए गए कर्मसिद्धान्त के अनुसार जहाँ कर्म बन्धनों, जन्मों, सुख-दुःखों और भय- शोक का कारण था, वहीं यहाँ शंकरदेव स्पष्ट करते हैं कि कर्म के क्षीण हो जाने पर जीव उन सब बन्धनों से ऊपर उठकर परम तत्व में पूर्णरूप से स्थित हो जाता है। यही स्थिति 'मुकुति' का चरम स्वरूप है।

सवे कर्मबन्ध हैव क्षीण।
अन्तकाले मोत याइबि लीन।।[13]

अर्थात् जब साधक के सभी कर्मबंधन भक्ति और ईश्वरस्मरण से धीरे-धीरे नष्ट हो जाते हैं, तब कर्मों का प्रभाव पूरी तरह समाप्त हो जाता है। और जब जीवन का अंतिम क्षण आता है, उस समय शुद्ध और शांत चित्त वाला जीव ईश्वर में लीन हो जाता है। अर्थात् जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होकर परम अवस्था को प्राप्त करता है।

आदि शंकराचार्य और श्रीमंत शंकरदेव दोनों मोक्ष को मानव जीवन का परम उद्देश्य मानते हैं, किन्तु कर्म की भूमिका को लेकर उनके दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण भेद दिखाई देता है। शंकराचार्य के अनुसार कर्म नित्य और अनन्त मोक्ष का साधन नहीं हो सकता, क्योंकि कर्म स्वभावतः अनित्य हैं और उनके फल सुख-दुःख का अनुभव कराने वाले होते हैं। इसलिए वे मोक्ष को केवल ज्ञान साध्य मानते हैं और कहते हैं कि कर्म केवल चित्त शुद्धि के सहायक हैं, साधन नहीं। इसके विपरीत, श्रीमंत शंकरदेव कर्म को जीव की सम्पूर्ण सांसारिक गति, जन्म, जीवन, अनुभव और प्रलय का निर्णायक आधार मानते हैं। उनके अनुसार कर्म ही बन्धन का कारण है और जब यह कर्मबंधन भक्ति, नाम-स्मरण और ईश्वर-समर्पण से क्षीण हो जाता है, तब जीव अन्तकाल में परमात्मा में लीन होकर मुक्त होता है। इस प्रकार जहाँ शंकराचार्य मोक्ष को ज्ञान द्वारा उपलब्ध अधिभौतिक अवस्था के रूप में देखते हैं, वहीं शंकरदेव उसे कर्मक्षय और भक्ति के फलस्वरूप प्राप्त दिव्य लीनता के रूप में प्रतिपादित करते हैं। दोनों की दृष्टियों में भिन्नता के बावजूद एक समानता यह है कि दोनों ही कर्म को बन्धन का कारण और मोक्ष को कर्म से परे स्थित एक उच्चतम, शुद्ध, अध्यात्मिक अवस्था मानते हैं।

निष्कर्ष:

निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि आचार्य शंकर एवं श्रीमंत शंकरदेव ने मानव जीवन के चरम लक्ष्य के रुप में 'मोक्ष' को मान्यता प्रदान किया है। दोनों आचार्य इस बात पर सहमत हैं कि संसार की वस्तुएँ अनित्य और बदलने वाली हैं, इसलिए वे अंतिम सत्य नहीं हो सकतीं। मनुष्य को अपने जीवन को उस परम सत्य के अनुरूप ढालना चाहिए जो सदा एक और अविचल है। अद्वैत वेदान्त के **"यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे"** आदर्श मानव को सार्वभौमिक एकता की ओर उन्मुख करते हैं और उसे करुणा, सत्य, अहिंसा तथा सद्गुणों के विकास हेतु प्रेरित करते हैं। श्रीमन्त शंकरदेव भी इसी दृष्टि को स्वीकार करते हैं; उनके एकशरण हरिनाम धर्म भी सर्वभूतों में ईश्वर की उपस्थिति को स्वीकार करता है और भक्ति के माध्यम से मानव समाज में समानता, प्रेम और एकात्मता की भावना को जागृत करता है। इस प्रकार, चाहे शंकराचार्य का अद्वैत-सिद्धान्त हो या शंकरदेव का भक्ति आधारित एकत्व बोध दोनों ही मानव जीवन को व्यापक सदाचार, समन्वय और सार्वभौमिक मानवता की दिशा में प्रेरित करते हैं। वास्तविकता यह है कि आदि शंकरचार्य एवं श्रीमंत शंकरदेव के विचार में मोक्ष के स्वरुप और उसकी प्राप्ति के साधनों को लेकर मतभेद है, किन्तु दोनों ही इस बात को लेकर एकमत हैं कि मोक्ष की अवस्था में जीवन- मरण का वह प्रवाह रुक जाता है, जो जीव को प्रपंचात्मक जगत् में लिप्त रखता है तथा उसे बन्धनग्रस्त बनाता है। अतएव यह कहा जा सकता है कि मोक्षावस्था एक ऐसी अवस्था है, जिसमें जीव अखण्ड आनन्द का लाभ उठाता है, मनुष्य के लिए मूल्यवान आदर्श है तथा स्वागत योग्य है।

संदर्भ ग्रंथ:

- सक्सेना, डॉ कंचन, (१९९३), पूर्वी एवं पाश्चात्य धर्मों में मोक्ष की अवधारणा, दिल्ली : निर्मल पब्लिकेशन ।
- माधवाचार्य. (१९४४). *श्री शंकर दिग्विजय* (अनुवाद: बलदेव उपाध्याय). हरिद्वार: श्री श्रवणनाथ ज्ञान मंदिर।
- योगीन्द्रानन्द, स्वामी. (१००५). *ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यं*. वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन।
- मुनिलाल (अनुवादक). (२०१३). *विवेक-चूड़ामणि*. गोरखपुर: गीताप्रेस।
- *ईशादि नौ उपनिषद्* (*शाङ्करभाष्यार्थ सहित*). (२०१३). गोरखपुर: गीताप्रेस।
- হাজৰিকা, দীপক (সম্পা.) (২০২০)। *শ্রীশ্রীশংকৰদেৱ আৰু শ্রীশ্রীমাধৱদেৱ প্রণীত কীর্তনী ঘোষা আৰু নাম-ঘোষা* (দ্বিতীয় প্রকাশ), গুৱাহাটীঃ বনলতা।
  (হজারীকা, দীপক (संपादक). (2020). *श्रीश्री शंकरदेव और श्रीश्री माधवदेव द्वारा रचित कीर्तन घोष और नाम-घोष* (दूसरा संस्करण). गुवाहाटी: बनलता।)
- গোস্বামী, সুনীল কুমাৰ, (2016)। *কথা ভাগৱত:* সম্পূর্ণ দ্বাদশস্কন্ধ, জ্যোতি প্রকাশন।
  (गोस्वामी, सुनील कुमार. (2016). *कथा भागवत: संपूर्ण द्वादश स्कंध*. ज्योति प्रकाशन।)
- বেজবৰুৱা, লক্ষ্মীনাথ. (1988). *মহাপুৰুষ শ্রীমাধৱদেৱ আৰু মাধৱদেৱ*. গুৱাহাটী: সাহিত্য প্রকাশ । (बेजबरुआ, लक्ष्मीनाथ. (1988). *महापुरुष श्रीमाधवदेव और माधवदेव*. गुवाहाटी: साहित्य प्रकाश।)
- দেৱ, মহাপুৰুষ শ্রীমন্ত শংকৰ (2017) ভক্তি-ৰত্নাকৰ (অনু. শ্রী ঠাকুৰ ৰামচৰণ)কলিকতা: আৰ, ব্যানার্জী ইন্দু- নাৰায়ণ প্রিন্টিং ওৱার্কছ্।
  (देव, महापुरुष श्रीमंत शंकर.(२०१७).*भक्ति-रत्नाकर* (अनुवाद: श्री ठाकुर रामचरण) कोलकाता: आर. बनर्जी, इंदु-नारायण प्रिंटिंग वर्क्स ।)

[13] कीर्तनघोषा पद ४५४